

पर्यावरण विनाश तथा पूंजीवादी लूट का शिकार - बुन्देलखंड

डॉ. राम प्रताप गुप्ता

भारत के मध्य में स्थित तथा मध्यप्रदेश के 6 जिलों दतिया, टीकमगढ़, पन्ना, दमोह, छतरपुर और सागर तथा उत्तरप्रदेश के 7 जिलों झांसी, जालौन, हमीरपुर, ललितपुर, बांदा, चित्रकूट एवं महोबा के अंतर्गत आने वाले 70 हज़ार वर्ग कि.मी. क्षेत्र को बुंदेलखंड के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र में 1.55 करोड़ लोग निवास करते हैं। चंदेलों और बुंदेलों से शासित यह प्रदेश कभी देश के सम्पन्न क्षेत्रों में शामिल होता था। इसकी सम्पन्नता से ही आकर्षित होकर अंग्रेजों ने झांसी के राज्य पर कब्ज़ा करना चाहा था।

इस क्षेत्र को प्रकृति ने विकास की संभावनाओं का वरदान दिया है। इसके बावजूद आज यह क्षेत्र गरीबी, भुखमरी और पलायन का पर्याय बनकर रह गया है। वर्षा की समाप्ति और खरीफ की फसल के बाद ही लाखों लोग रोज़ी-रोटी की तलाश में दिल्ली, मुंबई, लखनऊ, अलीगढ़, इटावा आदि शहरों की ओर पलायन करते हैं। गांवों में टूटी झोपड़ियों में वृद्ध, छोटे बच्चे, बीमार ही बचते हैं। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि विकास की सभी संभावनाओं को संजोए और कभी सम्पन्न रहा यह क्षेत्र आज दरिद्रता, भुखमरी, कुपोषण, पलायन का पर्याय कैसे बन गया है?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए विगत वर्षों में अपनाई गई अनुपयुक्त नीतियों और क्षेत्र की पूंजीवादी लूट पर नज़र डालना होगा। इस क्षेत्र की भूमि काली और लाल मिट्टी वाली है जिसमें वर्षा का मात्र 15 प्रतिशत पानी ही रिसकर भूजल भंडारों में पहुंचता है। वर्षा का औसत 75 से 100 से.मी. के बीच रहता है। इसे देश के अर्धशुष्क क्षेत्रों में गिना जाता है। क्षेत्र में बेतवा, धासन, बघाई, पाहुल जैसी नदियां और अनेक नदी नाले बहते हैं। पहले यहां तालाबों का जाल सा बिछा था जिससे सिंचाई और भूजल भंडार समृद्ध होते थे। एक ही गांव में परस्पर जुड़े हुए पांच-पांच, छह-छह तालाब हुआ करते थे ताकि उनमें वर्षा की एक-एक बूंद को संग्रहित किया जा सके। ये तालाब सिंचाई के साथ-साथ

भूजल भण्डारों को भी समृद्ध बनाए रखते थे। किसान ज्वार, बाजरा जैसे मोटे अनाजों, अरहर, मसूर जैसी दालों व अलसी, लाही जैसे तिलहनों की खेती करते थे। इस क्षेत्र में दालों की तो इतनी पैदावार होती थी कि इसे देश का 'दाल का कटोरा' कहा जाता था। सारी कृषि प्राकृतिक संसाधनों के अनुरूप होने के चलते अर्धशुष्क क्षेत्र होने के बावजूद, सामरा समिति के अनुसार, यहां पन्द्रह वर्ष में एक बार ही सूखा पड़ता था। दालों की खेती से भूमि की उर्वरा शक्ति भी बनी रहती थी क्योंकि दालों की खेती से 20-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन भूमि में फिक्स होती थी।

साठ के दशक में आई हरित क्रांति से प्रभावित होकर इस क्षेत्र में गेहूं और अन्य व्यवसायिक फसलों को प्रोत्साहित किया गया, सिंचाई के लिए कुएं खोदे जाने लगे। समय के साथ एक ओर तो भूजल का अति दोहन शुरू हुआ तथा दूसरी ओर तालाबों की देखभाल की उपेक्षा हुई और तालाबों की भूमि का अतिक्रमण हुआ। इसके चलते उनके द्वारा भूजल भंडारों का पुनर्भरण प्रतिकूल प्रभावित हुआ और भूजल स्तर में तेज़ी से गिरावट आने लगी। छोटे किसानों के कुएं सूखने लगे तथा बड़े किसानों ने नलकूप लगाना शुरू कर दिया। छोटे किसान खेती से आजीविका संभव न रह जाने के कारण भूमि बेचकर मज़दूरी की तलाश में अन्यत्र पलायन करने लगे। कभी खेती-बाड़ी से आजीविका अर्जित करने वाले छोटे किसान अन्यत्र ईंट-भट्टों, भवन निर्माण आदि में मज़दूर बनकर रह गए। कृषि भूमि पर बड़े किसानों का कब्ज़ा होता गया, उनका 60-100 एकड़ भूमि का स्वामी होना सामान्य हो गया। दालों की खेती से भूमि को मिलने वाली उर्वरा शक्ति अब उपलब्ध न होने के कारण उपज कमज़ोर हो गई और बड़े कृषकों की आय भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई। पारिस्थितिकी के प्रतिकूल खेती ने इलाके को बरबाद करके रख दिया। अब हर 4-5 वर्षों में सूखा पड़ने लगा।

प्रकृति ने इस क्षेत्र को विविध खनिज संपदा से विभूषित किया है। इस क्षेत्र में हीरे, ग्रेनाइट, चूना पत्थर, लौह खनिज, फास्फेट, डोलोमाइट, संगमरमर आदि प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इन पर आधारित औद्योगिक विकास की संभावनाएं भी थीं। किंतु औद्योगिक संभावनाओं को नकारकर इसे कच्चे माल के रूप में अन्यत्र भेजा जाने लगा। यहां से प्रतिदिन ग्रेनाइट, रेत, लाइम स्टोन से भरे हज़ारों ट्रक जाते हुए देखना आम बात है। जहां कभी पहाड़ियां थी, ठेकेदारों ने उन्हें गहरे गड्ढों में बदल दिया है। परिणामस्वरूप वर्षा के पानी का बहाव भी प्रभावित हुआ है। खदानों के गहरे गड्ढों के कारण आसपास का भूजल भी उनमें एकत्र हो जाता है।

यहां कार्यरत श्रमिकों को न्यूनतम मज़दूरी पर भुगतान तो दूर, नाम मात्र की मज़दूरी भी समय पर नहीं मिल पाती है। इस क्षेत्र में हज़ारों स्टोन क्रशर्स लग गए हैं। कबराई खदान के बीस कि.मी. क्षेत्र में 150 से अधिक स्टोन क्रशर्स हैं। हज़ारों की संख्या में इनमें कार्यरत मज़दूर सिलिकोसिस के शिकार होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं।

नदियों से रेत निकालने का ठेका कानूनन मछुआरों को ही दिया जा सकता है। परन्तु बड़े पूंजीपति ठेकेदार मछुआरों को नाम मात्र की राशि का भुगतान कर स्वयं रेत का उत्खनन करते हैं। पिछले 20 वर्षों से क्षेत्र की नदियों से वर्ष भर रेत निकाली जा रही है और प्रतिदिन सैकड़ों ट्रक रेत अन्य राज्यों को जाती है। इन ट्रकों के कारण सड़कें ठहर ही नहीं पाती और उनमें गहरे-गहरे गड्ढे पड़ गए हैं। इन सड़कों पर अनवरत चलते ट्रकों और स्टोन क्रशर्स से भारी मात्रा में धूल उड़कर आसपास के खेतों, पेड़-पौधों पर जम जाती है और प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करती है। इसके चलते निम्नस्तरीय उत्पादन के शिकार किसान बरबाद हो रहे हैं परन्तु बड़े-बड़े पूंजीपतियों, ठेकेदारों की थैलियां तो मोटी होती ही जा रही हैं। नदियों में गहरे-गहरे गड्ढे हो जाने के कारण गर्मियों में उनसे होने वाला भूजल भंडारों का पुनर्भरण भी प्रतिकूल प्रभावित हो रहा है। इस पृष्ठभूमि में क्षेत्र की पारिस्थितिकी का संपूर्ण विनाश स्वाभाविक ही था।

पारिस्थितिकी विनाश के चलते कभी 15-16 वर्ष में सूखे का शिकार होने वाला यह क्षेत्र अब 5-6 वर्षों में सूखे का शिकार होता है। सन 2003-08 की पूरी अवधि में यह क्षेत्र सूखे का शिकार रहा है। बुंदेलखण्ड में सूखे के प्रभावों को कम करने हेतु बिठाई गई सामरा समिति का कहना था कि इस अवधि में क्षेत्र के 70 प्रतिशत तालाब सूख गए हैं जिसके कारण पूरे क्षेत्र में पेयजल का संकट हो गया है। मई-जून सन 2008 में गांवों में पेयजल पूर्ति हेतु 5000 टैंकर लगाने पड़े थे। इन टैंकरों के पानी को लूट से बचाने के लिए साथ में पुलिस भी लगानी पड़ी थी। कभी तालाबों से आच्छादित इस क्षेत्र में पीने का पानी भी दुर्लभ चीज़ हो गया था।

अनुपयुक्त कृषि और प्राकृतिक संसाधनों की लूट से प्रभावित इस क्षेत्र की आबादी का लाखों की संख्या में स्थाई-अस्थायी पलायन होता है। साथ ही आम आदमी की बढ़ती दरिद्रता और भुखमरी तथा दूसरी ओर व्यापारियों-ठेकेदारों-पूंजीपतियों की सम्पन्नता ने क्षेत्र की सामाजिक समरसता को भी समाप्त कर दिया है। ऐसे में कुछ युवकों का विद्रोह कर डाकू बन जाना भी स्वाभाविक प्रतिक्रिया ही मानी जानी चाहिए। पिछले वर्षों में बुंदेलखंड क्षेत्र डाकू ग्रस्त भी हो गया था।

सारे विश्लेषण के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि इस क्षेत्र की इन वर्षों की त्रासदी के पीछे वर्षा के अभाव और उसकी अनियमितता को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। यह तो दीर्घकालीन संरचनात्मक विकृतियों का सम्मिलित परिणाम है। सारे विश्लेषण से यह तथ्य भी उभरकर सामने आता है कि विकास नीतियों में स्थानीय पारिस्थितिकीय घटकों का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए और विकास प्रयास को पूंजीपतियों की लूट का शिकार होने से बचाया जाना चाहिए। आम आदमी और गरीबों के हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता भी प्रदान की जानी चाहिए, अन्यथा उनके दरिद्रीकरण, भुखमरी और अभावों का शिकार बन जाने की पूरी संभावनाएं होती हैं। **(स्रोत फीचर्स)**